घंटाघर

चंद्रधर शर्मा गुलेरी

हिन्दी ADDA

घंटाघर

एक मनुष्य को कहीं जाना था। उसने अपने पैरों से उपजाऊ भूमि को बंध्या करके पगडंडी काटी और वह वहाँ पर पहला पहुँचने वाला हुआ। दूसरे, तीसरे और चौथे ने

वास्तव में उस पगडंडी को चौड़ी किया और कुछ वर्षों तक यों ही लगातार जाते रहने से वह पगडंडी चौड़ा राजमार्ग बन गई, उस पर पत्थर या संगमरमर तक बिछा दिया गया, और कभी-कभी उस पर छिड़काव भी होने लगा।

वह पहला मनुष्य जहाँ गया था वहीं सब कोई जाने लगे। कुछ काल में वह स्थान पूज्य हो गया और पहला आदमी चाहे वहाँ किसी उद्देश्य से आया हो, अब वहाँ जाना ही लोगों का उद्देश्य रह गया। बड़े आदमी वहाँ घोड़ों, हाथियों पर आते, मखमल कनात बिछाते जाते, और अपने को धन्य मानते आते। गरीब आदमी कण-कण माँगते वहाँ आते और जो अभागे वहाँ न आ सकते वे मरती बेला अपने पुत्र को थीजी कि आन दिला कर वहाँ जाने का निवेदन कर जाते। प्रयोजन यह है कि वहाँ मनुष्यों का प्रवाह बढ़ता ही गया।

एक सज्जन ने वहाँ आनेवाले लोगों को कठिनाई न हो, इसलिए उस पवित्र स्थान के चारों ओर, जहाँ वह प्रथम मनुष्य आया था, हाता खिंचवा दिया। दूसरे ने, पहले के काम में कुछ जोड़ने, या अपने नाम में कुछ जोड़ने के लोभ से उस पर एक छप्पर डलवा दिया। तीसरे ने, जो इन दोनों से पीछे रहना न चाहता था, एक सुंदर मकान से उस भूमि को ढक दिया, इस पर सोने का कलश चढ़ा दिया, चारों ओर से बेल छवा दी। अब वह यात्रा, जो उस स्थान तक होती थी, उसकी सीमा की दीवारों और टट्टियों तक रह गई, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य भीतर नहीं जा सकता। इस 'इनर सर्कल' के पुजारी बने, भीतर जाने की भेंट हुई, यात्रा का चरम उद्देश्य बाहर की दीवार को स्पर्श करना ही रह गया, क्योंकि वह भी भाग्यवानों को ही मिलने लगा।

कहना नहीं होगा, आनेवालों के विश्राम के लिए धर्मशालाएँ, कूप और तड़ाग, विलासों के लिए शुंडा और सूणा, रमणिएँ और आमोद जमने लगे, और प्रति वर्ष जैसे भीतर जाने की योग्यता घटने लगी, बाहर रहने की योग्यता, और इन विलासों में भाग लेने की योग्यता बढ़ी। उस भीड़ में ऐसे वेदांती भी पाए जाने लगे जो दूसरे की जेब को अपनी ही समझ कर रुपया निकाल लेते। कभी-कभी ब्रह्मा एक ही है उससे जार और पति में भेद के अध्यास को मिटा देनेवाली अद्वैतवादिनी और स्वकीया-परकीया के भ्रम से अवधूत विधूत सदाचारों के शुद्ध द्वैत(=झगड़ा) के कारण रक्तपात भी होने लगा। पहले यात्राएँ दिन-ही-दिन में होती थीं, मन से होती थीं, अब चार-चार दिन में नाच-गान के साथ और आफिस के काम को करते सवारी आने लगी।

एक सज्जन ने देखा की यहाँ आनेवालों को समय के ज्ञान के बिना बड़ा कष्ट होता है। अतएव उस पुण्यात्मा ने बड़े व्यय से एक घंटाघर उस नए बने मकान के ऊपर लगवा

दिया। रात के अंधकार में उसका प्रकाश, और सुनसानी में उसका मधुर स्वर क्या पास के और क्या दूर के, सबके चित्त को सुखी करता था। वास्तव में ठीक समय पर उठा देने और सुला देने के लिए, एकांत में पापियों को डराने और साधुओं को आश्वासन करने के लिए वह काम देने लगा। एक सेठ ने इस घंटे की (हाथ) (सूइयाँ) सोने की बनवा दीं और दूसरे ने रोज उसकी आरती उतारने का प्रबंध कर दिया।

कुछ काल बीत गया। लोग पुरानी बातों को भूलने लग गए। भीतर जाने की बात तो किसी को याद नहीं रही। लोग मंदिर की दीवार का छूना ही ठीक मानने लगे। एक फिर्का खड़ा हो गया जो कहता था कि मंदिर की दक्षिण दीवाल छूनी चाहिए, दूसरा कहता कि उत्तर दीवाल को बिना छुए जाना पाप है। पंद्रह पंडितों ने अपने मस्तिष्क, दूसरों की रोटियाँ और तीसरों के धैर्य का नाश करके दस पर्वों के एक ग्रंथ में सिद्ध कर दिया या सिद्ध करके अपने को धोखा देना चाहा कि दोनों झूठे हैं। पवित्रता प्राप्त करने के लिए घंटे की मधुर ध्वनि का सुनना मात्र पर्याप्त है। मंदिर के भीतर जाने का तो किसी को अधिकार ही नहीं है, बाहर की शुंडा और सूणा में बैठने से भी पुन्य होता है, क्योंकि घंटे का पवित्र स्वर उन्हें पूत कर चुका है। इस सिद्ध करने या सिद्ध करने के मिस का बड़ा फल हुआ। गाहक अधिक जुटने लगे। और उन्हें अनुकूल देख कर नियम किए गए कि रास्ते में इतने पैंड़ रखने, घंटा बजे तो यों कान खड़ा करके सुनना, अमुक स्थान पर वाम चरण से खड़े होना, और अमुक पर दक्षिण से। यहाँ तक कि मार्ग में छींकने तक का कर्मकांड बन गया।

और भी समय बीता। घंटाघर सूर्य के पीछे रह गया। सूर्य क्षितिज पर आ कर लोगों को उठाता और काम में लगता, घंटाघर कहा करता कि अभी सोए रहो। इसी से घंटाघर के पास कई छोटी-मोटी घड़ियाँ बन गईं। प्रत्येक में की टिक-टिक बकरी और झलटी को मात करती। उन छोटी-मोटियों से घबरा के लोग सूर्य की ओर देखते और घंटाघर की ओर देख कर आह भर देते। अब यदि वह पुराना घंटाघर, वह प्यारा पाला-पोसा घंटा ठीक समय न बतावे तो चारों दिशाएँ उससे प्रतिध्वनि के मिस से पूछती हैं कि तू यहाँ क्यों है? वह घृणा से उत्तर देता है कि मैं जो कहूँ वही समय है। वह इतने ही में संतुष्ट नहीं है कि उसका काम वह नहीं कर सकता और दूसरे अपने आप उसका काम दे रहे हैं, वह इसी में तृप्त नहीं है कि उसका ऊंचा सिर वैसे ही खड़ा है, उसके मांजने को वही वेतन मिलता है, और लोग उसके यहाँ आना नहीं भूले हैं। अब यदि वह इतने पर भी संतुष्ट नहीं, और चाहे कि लोग अपनी घड़ियों के ठीक समय को बिगाड़ उनकी गति को रोकें ही नहीं, प्रत्युत उन्हें उल्टी चलावें, सूर्य उनकी आज्ञानुसार एक मिनट में चार डिग्री पीछे हटे, और लोग जाग कर भी उसे देख कर सोना ठीक समझें, उसका बिगड़ा

और पुराना काल सबको संतोष दे, तो वज्र निर्घोष से अपने संपूर्ण तेज से, सत्य के वेग से मैं कहूँगा - 'भगवन, नहीं कभी नहीं। हमारी आँखों को तुम ठग सकते हो, किंतु हमारी आत्मा को नहीं। वह हमारी नहीं है।

जिस काम के लिए आप आए थे वह हो चुका, सच्चे या झूठे, तुमने अपने नौकरों का पेट पाला। यदि चुपचाप खड़े रहना चाहो तो खड़े रहो, नहीं तो यदि तुम हमारी घड़ियों के बदलने का हठ करोगे तो, सत्यों के पिता और मिथ्याओं के परम शत्रु के नाम पर मेरा-सा तुमारा शत्रु और कोई नहीं है। आज से तुम्हारे मेरे में अंधकार और प्रकाश की-सी शत्रुता है, क्योंकि यहाँ मित्रता नहीं हो सकती। तुम बिना आत्मा की देह हो, बिना देह का कपड़ा हो, बिना सत्य के झूठे हो! तुम जगदीश्वर के नहीं हो, और न तुम पर उसकी सम्मति है, यह व्यवस्था किसी और को दी हुई है। जो उचक्का मुझे तमंचा दिखा दे, मेरी थैली उसी की, जो दुष्ट मेरी आँख में सूई डाल दे, वह उसे फोड़ सकता है, किंतु मेरी आत्मा मेरी और जगदीश्वर की है, उसे तू, हे बेतुके घंटाघर, नहीं छल सकता अपनी भलाई चाहे तो हमारा धन्यवाद ले, और-और और चला जा!!'